महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५६ अंक : १८
दयानन्दाब्द: १९०
विक्रम संवत्: आश्विन कृष्ण, २०७१
कलि संवत्: ५११५
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११५

सम्पादक
प्रो. धर्मवीर

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

-परोपकारी का शुल्क-

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु., **त्रिवार्षिक**-५८० रु., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-२००० रु.।

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस. डालर, **द्विवार्षिक**-९५ पा./१५२ डा., **त्रिवार्षिक**-१४० पा./२२५ डा., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-५०० पा./८०० डा.।

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

सितम्बर द्वितीय २०१४

अनुक्रम

१. कचरे का भगवान : कचरे में	सम्पादकीय	०४
२. तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव देवत्वम्	स्वामी विष्वङ्	०७
३. पुस्तक-समीक्षा	देवमुनि	१०
४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	राजेन्द्र जिज्ञासु	११
५. आर्य समाज का प्रथम नियम	प्रो. वीरेन्द्र कुमार	१८
६. प्रतिक्रिया		२१
७. वैदिक पुस्तकालय के प्रकाशन		२२
८. मृत्यु और जन्म के बीच की गति	श्री जगदेव सिंह	२४
९. तुम हिन्दू हो या आर्य?	राजेन्द्र जिज्ञासु	२९
१०. जिज्ञासा समाधान-७१	आचार्य सोमदेव	३५
११. संस्था-समाचार		३८
१२. आर्यजगत् के समाचार		४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

सम्पादकीय

कचरे का भगवान : कचरे में

यह शीर्षक कुछ वर्ष पूर्व इन्टरनेट पर किसी ने डाला था। इसके साथ कुछ चित्र थे जिनमें मुम्बई के गणेश पण्डाल के बड़े-बड़े गणेश जी, बड़ी-बड़ी मशीनों से समुद्र में धकेले जा रहे थे। शीर्षक तो ठीक ही था क्योंकि कुछ दिन पहले इन सभी भगवानों की रचना कचरा मिट्टी से की गई थी। इनको रंग-रोगन से सजा कर विशाल पण्डाल की शोभा बढ़ाई गई। प्राण प्रतिष्ठा करके इनकी आरती उतारी गई, पूजा की गई और लाखों लोगों ने अपनी-अपनी प्रार्थना भगवान गणेश जी की सेवा में प्रस्तुत की। कितनों की प्रार्थना स्वीकार की गई, भगवान के सचिवों को ही पता होगा। प्रतिवर्ष यही क्रम चलता रहता है। मौसम के अनुसार भगवान बनते हैं, बाजारों में बिकते हैं, पण्डालों में सजते हैं और पुनः कचरे के ढेर में मिल जाते हैं।

भगवानों का बाजार लगता है। बाजार में कभी कृष्ण की भीड़ रहती है, कभी गणेश की, कभी राम की तो कभी देवी की, ये कभी समय के अनुकूल तो कभी क्षेत्रीय परम्परा के अनुकूल बाजार की शोभा बढ़ाते रहते हैं। प्रश्न उठता है क्या ये भगवान हैं? इसका उत्तर आता है मानो तो पत्थर भी भगवान है नहीं मानो तो भगवान भी कुछ नहीं। मूल बात इसमें है कि ये सब भगवान मानने का परिणाम है। यहाँ मानने और होने का अन्तर समझने की आवश्यकता है। मानने के लिए होना आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति जो कुछ स्वयं मानता है, किसी दूसरे के लिए उसका मानना आवश्यक नहीं है। अतः जिसने जिसको भगवान मान लिया उसके लिए वही भगवान हो गया, इतने प्रकार और इतनी बड़ी संख्या के भगवान का यही कारण है। इसी प्रकार जिसे हम भगवान मानते हैं, वह भी अपने को भगवान माने यह आवश्यक नहीं है। हिन्दू गाय को माता मानता है परन्तु गाय के लिए हिन्दू या मुसलमान में कोई अन्तर नहीं, फिर आप पत्थर को भगवान माने यह आपकी इच्छा है। इस प्रकार मानने में भगवान की इच्छा नहीं, बनाने वाले की इच्छा काम करती है। कौन-सा भगवान बनाना है, राम वाला, कृष्ण वाला, गणेश वाला, देवी वाला या और कोई। बनाने वाला देखता है किस भगवान का समय चल रहा है? कौनसे भगवान के मानने वाले लोग अधिक हैं? बनाने वाला जैसा बाजार देखता है, वैसा ही भगवान बना कर बेच लेता है, उसका काम चल जाता है, वह भी भगवान का धन्यवाद करता है। यहाँ रोचक तथ्य है बनाने वाले पर भगवान की कृपा होती है परन्तु बिकने पर। भगवान भी बिना बिके कृपा नहीं कर सकता। बिल्कुल एक वस्तु की तरह जैसे एक वस्तु बनाई या खरीदी जाती है, वह लाभ तभी देती है जब वह बिक जाती है। वस्तु बिकेगी नहीं तो लाभ भी नहीं होगा। समझने की बात है कि भगवान और कुछ नहीं एक बेचने-खरीदने की वस्तु है, उसके बेचने-खरीदने में लाभ होता है।

यहाँ पर एक प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है, वस्तु के बेचने-खरीदने में लाभ होता है परन्तु वस्तु में बेचने-खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है, भगवान के बेचने वालों को लाभ दिखाई देता है परन्तु जो उसे खरीद कर उसकी पूजा करता है, उसको क्या लाभ होता है? क्योंकि बिना लाभ के कोई व्यक्ति किसी काम को नहीं करता, तो यहाँ मूर्ति के उपासक को क्या लाभ है? यह सच है बिना लाभ के कोई मनुष्य किसी कार्य को करने में प्रवृत्त नहीं होता। दुकान तभी चलती है जब दुकानदार को लाभ हो और ग्राहक को उसकी आवश्यकता की वस्तु मिलती हो। मूर्ति पूजा में दोनों का लाभ पृथक्-पृथक् जानने की आवश्यकता है। मूर्त्ति पूजा शुद्ध व्यवसाय है जिस किसी ने भी इसे चलाया होगा वह सर्वश्रेष्ठ व्यापारी रहा होगा। हम एक व्यापारी को देखते हैं, वह सामान लाता है, दुकान पर बैठकर उसे बेचता है। इस कार्य में उसका धन लगता है जिसे हम पूँजी कहते हैं, उसको बेचने तक जो प्रयास होते हैं उसमें भी उसका व्यय होता है। ग्राहक को अच्छी वस्तु मिले, नाप-तोल पूरा हो वह व्यापारी का उत्तरदायित्व है। ग्राहक की प्रतीक्षा में उसे दुकान पर बैठना पड़ता है या उसकी खोज में भटकना पड़ता है, इस परिश्रम के पश्चात् जो उसके पास शेष रहता है उसे वह लाभ में गिनता है। इसके विपरीत मूर्तिपूजा को शून्य पूँजी से प्रारम्भ किया जा सकता है। एक आड़े टेढ़े पत्थर को भैरु जी, हनुमान जी कहकर एक व्यक्ति लेकर बैठता है या नहीं भी बैठता है, सायंकाल तक दस रुपये आये या सौ रुपये आये, वह पूरा का पूरा लाभ है, इसमें दुकानदार की भाँति पूँजी लगानी नहीं पड़ी, न रखवाली करनी पड़ी, न भगवान को ही कुछ देना पड़ा और भक्त की भावना पूर्ण हुई या अपूर्ण रह गई इसका कोई उत्तरदायित्व पुजारी या महन्त पर नहीं है। लाभ के प्रतिशत की कोई सीमा नहीं है। दुकानदार एक नारियल लाता है, उस पर लाभ कमाकर ग्राहक को बेच देता है परन्तु हरिद्वार में हर की पौड़ी पर एक नारियल सवेरे से बिकना प्रारम्भ होता है, दिन में सौ बार बिके या

पाँच सौ बार इसकी कोई सीमा नहीं है। उसी प्रकार दरगाह या समाधि पर चढ़ने वाली चादर जब तक है कितनी भी बार बिक सकती है। इससे होने वाले लाभ की कोई सीमा नहीं। जो सामान खाने-पीने का, कपड़ा, सोना, चाँदी, पैसा है उसका उपयोग तो यथोचित होता ही है फिर मूर्ति पूजा की दुकान क्यों नहीं चलेगी। बड़े-बड़े मन्दिरों में पीढ़ियों से पुजारी इन्हीं मन्दिरों से आजीविका चला रहे हैं, वे अपने भगवान का धन्यवाद क्यों नहीं करेंगे? निराकार भगवान को खिला नहीं सकते अत: खाता नहीं, साकार भगवान खिलाने पर भी नहीं खाता अत: बचा सामान पुजारी के काम आता है।

अब प्रश्न बचता है पुजारी को लाभ होता है इसलिए वह मन्दिर चलाता है, भक्त को क्या लाभ होता है जो अपना खर्च करके भी मन्दिर में जाता है। जितना लाभ पुजारी को है उतना ही भक्त को भी है। कोई भी मन्दिर जाने वाला व्यक्ति दो कारणों से मन्दिर में जाता है प्रथम व्यक्ति भय के कारण। वह भय से मुक्ति पाने के लिए मन्दिर जाता है तथा दूसरा कारण है लोभ, जिसके कारण कोई मनुष्य मन्दिर या किसी धार्मिक स्थान की शरण लेता है। एक छात्र परीक्षा के दिनों में मन्दिर जाता है, भगवान से प्रार्थना करता है, भगवान परीक्षा अच्छी हो जाये, प्रश्नपत्र सरल आये। परीक्षा देने के बाद भगवान से प्रार्थना करता है, भगवान पास कर देना। रोगी व्यक्ति औषध उपचार से थक जाता है तो भगवान से कहता है, भगवान मुझे ठीक कर दे। कोई अपने बच्चों के लिए प्रार्थना करता है, कहता है भगवान बेटी का विवाह करा दो, बेटे की नौकरी लगवा दो, भगवान मुकद्दमा जितवा दो, संसारी मनुष्यों की हजारों कामनायें हैं जिन्हें लेकर मनुष्य मन्दिरों में जाते हैं। बहुत सारे लोग तीर्थ-दर्शन करा के तो कुछ यज्ञ-याग, जप-तप करा के मनोकामनाओं की पूर्ति का आश्वासन देते हैं और मनुष्य कभी भय का मारा तो कभी लोभ का मारा मन्दिरों के चक्कर काटता रहता है। अप्राप्त को प्राप्त करने की चाह में, जो पास में है, उसे भी मन्दिर के अर्पण कर देता है।

बहुत सारे लोग कहते हुए मिलते हैं हमने इस देवता की पूजा की हमें यह लाभ हुआ। शिव की श्रावण के सोमवार को पूजा करने से अविवाहित कन्याओं को श्रेष्ठ वर की प्राप्ति होती है। किसी का व्यापार सफल होता है। किसी की नौकरी लग जाती है। क्या यह सब झूठ है? ऐसा होता है तभी तो हजारों-लाखों व्यक्ति बार-बार भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं के यहाँ जाते हैं और उनकी कामना पूर्ण होती है, ऐसा सुना जाता है। इसकी परीक्षा के लिए हमें विचार करना होगा, एक वर्ष में कितने भक्त मन्दिर में मनोकामना लेकर आये और कितनों की मनोकामना पूर्ण हुई। मनोकामना पूर्ण होगी, ऐसी आशा और विश्वास तो सभी भक्तों का है परन्तु इसमें कितने लोगों की मनोकामना पूर्ण हुई और कितनों की अपूर्ण रह गई, इस संख्या के बिना ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सकता। मन्दिर में जाने वाले कुछ लोगों की मनोकामना पूर्ण हुई और कुछ की कामना अपूर्ण रह गई तब यह कहना असत्य है कि अमुक भगवान की पूजा से या अमुक मन्दिर में जाने से मनोकामना पूर्ण हो जाती है। यदि सभी मन्दिर में जाने वालों की कामना पूर्ण होती हो तब तो यह सिद्धान्त बन जायेगा कि अमुक भगवान मनोकामना सिद्ध हैं, नहीं तो मनोकामना पूरी होने, न होने का कोई और कारण होना चाहिए। जिस कार्य का हमें कारण पता नहीं होता हम उसे किसी भी भगवान के हवाले कर देते हैं।

भगवान बड़ी सत्ता है, उससे छोटी-छोटी बातें माँगना अपनी मूर्खता और उसका अपमान है। यदि माँगने से या मन्दिर में भगवान के दर्शन करने से ही कुछ मिलता हो तो, देश के लिए कुछ माँग कर देखना चाहिए। एक भारतीय को चीन, पाकिस्तान, अमेरिका पर विजय माँग लेनी चाहिए। माँग भी लेंगे तो मिलेगी नहीं। इतिहास बताता है कि इस्लामी आक्रमण में कोई भी भगवान ऐसा नहीं बचा जिसके हाथ-पाँव न तोड़े गये हों, किसी की नाक, किसी का सिर धड़ से अलग न किया गया हो। फिर किसी भी भगवान ने अपना बचाव नहीं किया, वह भक्त का क्या बचाव कर सकता है?

किसी भी मन्दिर में जाने से मनोकामना पूर्ण होती है, इस अज्ञान मूलक विचार के कारण हिन्दू अपने करोड़ों देवी-देवताओं, समाधियों को छोड़कर मुसलमानों की दरगाह, पीर, फकीरों की दरगाहों पर मनोकामना पूर्ण करने के लिए अपने सिर फोड़ते हैं और अपना धन लुटाते हैं। इस व्यवहार में एक ही तर्क काम करता है, हमारा पत्थर भगवान तो ईसाई, मुसलमान का पत्थर भगवान क्यों नहीं? यही कारण है कि हिन्दुओं को शिव की पूजा करते-करते साईं की पूजा करने में कोई आपत्ति नहीं होती, क्योंकि दोनों ही स्थानों पर परिणाम भक्त पर निर्भर करता है, भगवान पर नहीं। मनुष्य भगवान की शरण में भय से जाता है या प्रलोभन से, अत: भगवान किसका है या कौन है? इस बात का कोई अर्थ नहीं है। भय और प्रलोभन अज्ञान का परिणाम है, ये दोनों अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। जब तक संसार में अज्ञान रहेगा तब तक भय और प्रलोभन मनुष्य

को तंग करते रहेंगे और पाखण्ड, मूर्तिपूजा, मन्दिर, मस्जिद और भगवान के अन्य सारे स्थान चलते रहेंगे। इनमें जाना और इनसे मनोकामना की पूर्ति मानना अज्ञान का परिणाम है। किसी भी कार्य का एक निश्चित कारण होता है। कारण होने पर ही कार्य होता है परन्तु मूर्ति पूजा और मन्दिरों के भगवान बिना कारण के कार्य करने के स्थान हैं अत: अवैदिक और अज्ञान मूलक है। इनका संसार में होना इनके सत्य होने का कारण नहीं अपितु अज्ञान और असत्य की सत्ता इनके होने में हेतु है।

लोग एक प्रश्न करते हैं क्या इतने लोग, इतने लम्बे समय से ऐसा करते आ रहे हैं, वे गलत कैसे हो सकते हैं? ऐसे लोगों से पूछा जाना चाहिए कि सत्य-असत्य, सही-गलत का निर्णय संख्या से हो सकता है क्या? यदि ऐसा हो तो मूर्ख रहना अच्छा है या पढ़-लिखकर विद्वान् बनना। **संख्या की दृष्टि से देखा जाये तो इस संसार में मूर्खों की संख्या ही सदा अधिक रही है और भविष्य में भी रहेगी क्योंकि अनपढ़ उत्पन्न होते हैं और विद्वान् बनाये जाते हैं, जो उत्पन्न होते हैं वे सदा ही अधिक होते हैं और जो बनाये जाते हैं उनकी संख्या निश्चित रूप से कम ही होगी।** अनपढ़ रहने से पढ़ा-लिखा होना सदा ही अच्छा है, इसका निर्णय संख्या से नहीं किया जा सकता, मूर्ति पूजा अज्ञान मूलक है। अत: कितने लोग करते हैं और कब से चली आ रही है इससे इसकी श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती। मिट्टी के गणेश तो आपका कुछ नहीं कर सकते, वे कल कचरे में मिलेंगे। हमारे पौराणिक भाई गणपति के लिए जो मन्त्र पढ़ते हैं, वह यजुर्वेद के २३वें अध्याय का १९वाँ मन्त्र है, उव्वट महीधर आदि मध्यकाल के भाष्यकारों ने यहाँ गणपति का अर्थ अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा किया है, उस घोड़े को रानी अपने पति के रूप में आह्वान करती है **'गणानां त्वा स्त्री गणानां मध्ये त्वां युगपत् गणपतिं हवामहे आह्वायाम।'** फिर हाथी वाले गणपति से इसका क्या सम्बन्ध है। इस अनर्थ परम्परा को छोड़ वास्तविक गणपति निराकार चेतन ईश्वर है, उसकी उपासना निश्चय ही फलदायक है, जिसके लिए वेद में कहा गया है-

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे,
प्रियानां त्वा प्रियपतिं हवामहे,
निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

अर्थात्- हे समूहाधिपते! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूँ तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं, इससे आपको मैं अवश्य जानूँ एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आपको प्रियपति मैं निश्चित निधिपति जानूँ। हे सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है, उस स्व सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूँ, सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है, यह जीवादि सशरीर प्राणि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं, आपकी कृपा से मैं अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को दूर फेंकूँ तथा हम लोग आपकी ही अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ, जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कहीं ठिकाना न लगेगा।

- धर्मवीर

ऋषि मेला २०१४ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष ऋषि मेला ३१ अक्टूबर, १, २ नवम्बर शुक्र, शनि, रविवार २०१४ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉलें लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उस क्रम से स्टॉलों का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉलों की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधा :– कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाईट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**–७.५ × १५ फीट।

ध्यातव्य : –१. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर–उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टेन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना अनुमति के पूर्व में स्टॉलों में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें।

आध्यात्मिक चिन्तन के क्षण.....

तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव देवत्वम्

- स्वामी विष्वङ्

परम कारुणिक जगदीश्वर ने सृष्टि (संसार) का निर्माण किया है। प्राय: मनुष्य सृष्टि पर प्रश्न चिह्न लगाता है अर्थात् परमेश्वर ने सृष्टि क्यों बनाई? सृष्टि के कारण आत्माओं को कितने दु:ख भोगने पड़ रहे हैं। यदि ईश्वर सृष्टि को उत्पन्न ही नहीं करते, तो इतने सारे दु:ख भोगने नहीं पड़ते। सृष्टि बनाकर ईश्वर ने हमें दु:ख सागर में ढ़केला है, इस प्रकार की अनेक बातें लोग कहा करते हैं। मनुष्य जो भी मन से विचार करता है या वाणी से बोलता है अथवा शरीर से करता है, उसके पीछे **'ज्ञान'** कारण बनता है। जानकारी (ज्ञान) उचित-सत्य युक्त होती है, तो उचित सत्य युक्त कर्म करता है। यदि जानकारी (ज्ञान) अनुचित-असत्य युक्त होती है, तो अनुचित असत्य युक्त कर्म करता है। चाहे वह कर्म मन से हो या वाणी से हो अथवा शरीर से हो। प्रत्येक कर्म के पीछे ज्ञान कारण बनता है। यदि मनुष्य ईश्वर की सृष्टि को लेकर कुछ भी वाणी से बोलता है, तो वह वाणी का कर्म है। यहाँ यह विचार करके समझना चाहिए कि क्या ईश्वर आत्माओं को दु:खी करना चाहता है या सुखी करना चाहता है? यदि ईश्वर दु:खी करना चाहता है, तो ईश्वर में और मनुष्यों में क्या अन्तर रह जायेगा? ऐसी स्थिति में दोनों एक जैसे हो जायेंगे क्योंकि मनुष्य अज्ञानता आदि दोषों के कारण अन्यों को दु:ख देता है। ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण अज्ञानता से युक्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि अल्पज्ञ (न्यून जानकारी रखने वाला) ही अज्ञानता से युक्त होता है और अन्यों को दु:ख देता है, परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता। हाँ, ईश्वर सर्वज्ञ के साथ-साथ न्यायकारी भी है और न्यायकारी का अर्थ है कर्म करने पर कर्म के आधार पर उचित न्याय करना, यही न्यायकारी होने का तात्पर्य है। इसलिए परमेश्वर आत्माओं को दु:ख सागर में नहीं ढ़केलता है।

हाँ, यदि परमेश्वर सृष्टि का निर्माण नहीं करता, तो आत्माएँ सदा दु:ख सागर में ही डूबी रहती। कारण यह है कि आत्माओं के पास इतना भी सामर्थ्य नहीं है कि वे अपनी अनुभूति कर सके। आत्माएँ ईश्वर प्रदत्त अहंकार नामक पदार्थ (यन्त्र) से अपनी अनुभूति कर पा रही हैं। यदि ईश्वर का सहयोग न मिले, तो आत्माएँ जड़ पदार्थ के समान मूर्छित पड़ी रहेंगी। आत्माएँ चेतन होते हुए भी जड़वत् रहेंगी। परन्तु ईश्वर की असीम कृपा है कि आज हम सब स्वयं को अनुभव कर पा रहे हैं। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न करके हम मनुष्यों को उत्तम अवसर दिया है कि कर्म करके ईश्वरीय आनन्द से युक्त हो सके। यदि ईश्वर सृष्टि का निर्माण नहीं करते, तो हम सब आत्माएँ आनन्द से वञ्चित रहते। इतना ही नहीं हम जड़ पदार्थों के समान चेतना शून्य (आत्मानुभूति रहित) होते। आत्माएँ कभी इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि चेतन हो कर चेतना रहित (आत्मानुभूति रहित) सदा बने रहे। यदि कोई कहे कि भले ही चेतनता से रहित हो जाते कम से कम दु:ख तो भोगने नहीं पड़ते। मनुष्य का यह कथन अनुचित इसलिए है कि कोई भी मनुष्य चेतना रहित मूर्छित रहना नहीं चाहता। एक-दो दिन की बात भी नहीं, सदा के लिए चेतना शून्य रहे, ऐसा कोई नहीं चाहता। चेतन हो कर चेतना शून्य सदा बने रहे, ऐसा कौन आत्मा चाहेगा? कोई वाणी से कथन तो अवश्य कर सकता है परन्तु अन्तरात्मा से कभी नहीं चाहेगा। इसलिए परम-पिता परमेश्वर ने सृष्टि बना कर आत्माओं पर महान उपकार किया है।

मनुष्य यह जो आरोप ईश्वर पर लगा रहा है कि ईश्वर ने सृष्टि बना कर आत्माओं को दु:ख सागर में ढ़केला है। यह आरोप आधार हीन है बल्कि परमात्मा ने संसार बना कर आत्माओं को दु:ख सागर से बचाया है। कैसे? आत्माएँ चेतन हो कर भी अनुभूति से शून्य थीं क्योंकि आत्माओं के पास स्वयं को अनुभव करने का सामर्थ्य नहीं था। यह आत्मा के लिए बहुत बड़ा दु:ख है। क्या यह छोटा दु:ख है? जो चेतन हो कर अपने चेतनत्व को अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए परमात्मा ने आत्माओं को दु:ख सागर में न ढ़केल कर दु:ख सागर से पार लगाया है। यहाँ पर एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संसार में आत्माएँ जो दु:ख भोग रहे हैं उसका कारण परमेश्वर नहीं है। फिर कौन है? स्वयं आत्माएँ हैं, यह कैसे? परम-पिता परमेश्वर ने सृष्टि बना कर आत्माओं को यह भी शिक्षा-उपदेश या आदेश दिया है कि इस संसार में किस प्रकार जीवन-यापन करना है। सृष्टि बना कर ईश्वर ने जिन मनुष्यों को उत्पन्न किया है, उनको सृष्टि में रहने के विधि-विधान और निषेध (क्या

नहीं करना) का बोध कराया है। सृष्टि के प्रारम्भिक मनुष्य ने अगली सन्तति को बताया, वे अगली सन्तति को, इस प्रकार परम्परा से एक-दूसरे को बताते हुए आ रहे हैं। सुन-सुन कर सभी उसी प्रकार चलते हुए आ रहे हैं। परन्तु जब मनुष्य ने आलस्य, प्रमाद करना प्रारम्भ किया तब से लिखना प्रारम्भ हो गया। ईश्वर ने जो उपदेश प्रारम्भिक मनुष्यों को दिया है वही उपदेश आज भी पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है और वह उपदेश **'वेद'** है।

वेद सभी ग्रन्थों में प्राचीन ग्रन्थ है और सृष्टिक्रम के अनुरूप है इतना ही नहीं प्रमाणों से युक्त भी है। इसलिए वेद मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी है। मनुष्य दु:खों से सर्वथा छूटना चाहता है, तो वेद ज्ञान के अनुरूप चल कर सभी दु:खों से छूट सकते हैं। जिस प्रकार मनुष्य परिवार में रह कर परिवार के नियमों का पालन करता है, समाज में रहकर समाज के नियमों का पालन करता है, प्रान्त में रहकर प्रान्त के नियमों का पालन करता है, देश-राष्ट्र में रह कर देश के नियमों का पालन करता है, विश्व में रह कर विश्व के नियमों का पालन करता है। ठीक इसी प्रकार ईश्वर द्वारा निर्मित सृष्टि में रह कर ईश्वर के नियमों का भी पालन करें। यदि मनुष्य ईश्वर के नियमों का पालन नहीं करता है, तो दु:ख सागर में डूबता है। जिस प्रकार परिवार, समाज, प्रान्त, देश व विश्व के नियमों का पालन न करने पर मनुष्य को दु:ख मिलता है। उसी प्रकार ईश्वर के नियमों का पालन न करने से भी दु:ख मिलता है। आज जो भी दु:ख भोग रहे हैं उनमें एक बहुत बड़ा भाग नियमों का पालन न करना है। दूसरा भाग अन्यों के द्वारा किया गया अन्याय है, जिसके कारण मनुष्य दु:ख भोगता है। मनुष्य अल्पज्ञ होने के कारण अन्याय करता या कर सकता है परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण कभी भी अन्याय नहीं कर सकता। इसलिए ईश्वर कभी भी किसी को भी अन्यायपूर्वक दु:ख नहीं दे सकता। यदि ईश्वर किसी को दु:ख देता है, तो वह दण्ड कहलाता है। जिसका एक मात्र उद्देश्य आगे चल कर मनुष्य अन्याय न कर सके।

परमेश्वर कभी भी किसी को भी दु:खी करने के लिए कभी दु:ख नहीं देता। हाँ, आगे (भविष्य में) और अधिक दु:ख न भोग सके उसके लिए ईश्वर दण्ड (दु:ख) देता है। ईश्वर के दु:ख देने में भी कल्याण (सुख) छुपा रहता है। ईश्वर मनुष्य का कभी भी अकल्याण नहीं करता इसलिए वह दयालु है। सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है, शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ, मन, अहंकार, महतत्त्व रूपी बुद्धि ये सब साधन ईश्वर ने दिये हैं। मनुष्य का अपना (स्वयं आत्मा के अतिरिक्त) कुछ भी नहीं है। इसलिए मनुष्य का परम कर्त्तव्य बनता है कि वह ईश्वर की सृष्टि में रहते हुए ईश्वर की आज्ञा का पालन करके ही सभी दु:खों से छुटकारा पा सकता है। यदि ऐसा नहीं करेगा, तो कभी भी दु:ख सागर से नहीं छूट पायेगा। यदि मनुष्य यह चाहे कि ईश्वर-आज्ञा का पालन भी न करना पड़े और सारे दु:खों से छुटकारा भी मिल जाये, ऐसा कोई मार्ग नहीं है। इसलिए जहाँ विकल्प (अन्य मार्ग) न हो वहाँ अपनी बुद्धि आदि को लगा कर समय व्यर्थ न करे, इसी में मनुष्य की बुद्धिमत्ता है। परमेश्वर ने दु:खों से छुटकारा पाने के लिए वेद के माध्यम से अनेक उपाय बताये हैं। उन उपायों में एक महत्त्वपूर्ण उपाय है **'देव'** बनना अर्थात् जन्म तो मनुष्य शरीर का मिला है परन्तु मनुष्य शरीर के मिलने मात्र से मनुष्य, मनुष्य नहीं कहलाता है। इसलिए उसे मनुष्य बनने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। प्राय: मनुष्य शरीर को पा कर शिक्षा ग्रहण करके मनुष्य, मनुष्य बन ही जाते हैं। परन्तु मनुष्य बनने मात्र से मनुष्य का प्रयोजन (सभी दु:खों से छूटना रूपी प्रयोजन) पूरा नहीं होता है। इसलिए मनुष्य को विशेष शिक्षा ग्रहण करना पड़ता है और वह विशेष शिक्षा दो प्रकार की है एक भौतिक दूसरी आध्यात्मिक दोनों शिक्षाओं की पूर्ति से मनुष्य, विशेष मनुष्य बन जाता है। जिसे वेद ने **'देव'** कहा है। जब मनुष्य विशेष गुणों को धारण करता है तब देवत्व को प्राप्त करता है। मनुष्य देवत्व को प्राप्त करके ही सभी दु:खों से छुटकारा पाकर ईश्वरीय आनन्द को प्राप्त कर मोक्ष में जाता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का प्रयोजन पूर्ण होता है।

मनुष्य ऐसा क्या करे जिससे वह विशेष गुणों को पाकर देवत्व को प्राप्त हो सके? इस सम्बन्ध में वेद कहता है-

'तन्मर्त्यस्य देवत्वम्' (यजुर्वेद ३१.१७)

इस वेद वाक्य का भाव बताते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है-

'तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव देवत्मस्तीति जानीत।'

अर्थात् उस परम-पिता परमेश्वर के ज्ञान को प्राप्त करना और उसकी आज्ञा पालन करना मनुष्य का देवत्व है, ऐसा समझना चाहिए। यहाँ पर वेद आदेश कर रहा है कि परमेश्वर को जानो अर्थात् ईश्वर की जानकारी प्राप्त करो। ईश्वर की जानकारी ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभावों

को जानने पर ही सम्भव हो सकती है। दूसरी यह बात कही जा रही है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना। मनुष्य किसी के अनुसार तभी चल सकता है जब उसे यह पता चले कि वह मुझ से श्रेष्ठ हो या उससे लाभ हो और वह लाभ भी सर्वाधिक हो उसके अनुसार चलने का यह भी कारण है वह मुझ से अधिक शक्तिशाली हो। इस कारण शक्तिशाली से भय होता है और भय के कारण उनके अनुसार चलता है। यहाँ पर ईश्वर में सर्वाधिक श्रेष्ठता, सर्वाधिक लाभ और सर्वाधिक शक्ति विद्यमान है ऐसा बताया जा रहा है। इसी कारण मनुष्य को कहा जा रहा है कि उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। सब से पहले मनुष्य को ईश्वर की जानकारी प्राप्त करना चाहिए और वह जानकारी वेद को पढ़ने (स्वाध्याय करने) से होगी। वेद में ईश्वर के अलग-अलग गुणों, कर्मों व स्वभावों का वर्णन आया है। उनको पढ़ कर, मनन-चिन्तन करके अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(यजुर्वेद ४०.८)

यहाँ पर वेद स्पष्ट रूप से ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों को बताते हुए कहता है वह परम-पिता परमेश्वर सभी दिशाओं में व्याप्त-विद्यमान है। ऐसा कोई स्थान (जगह) नहीं है जहाँ ईश्वर विद्यमान न हो अर्थात् ईश्वर **सर्वव्यापक** है। परमेश्वर शुक्र है अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सहजता-सरलता-बिना कठिनाई के स्वयं निर्माण करता है। उसमें अनन्त सामर्थ्य है, इसलिए ईश्वर **सर्वशक्तिमान्** है। जगदीश्वर **अकायम्** है अर्थात् वह कभी भी शरीर (अवतार) धारण नहीं कर सकता, क्योंकि वह अखण्ड, अनन्त और निर्विकार है। इस कारण ईश्वर स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण (सत्त्व, रज, तम रूपी) शरीर में नहीं आता है। इन तीनों शरीरों के बन्धनों में न आने के कारण ही उसे अकायम् कहा गया है। ईश्वर **अव्रणम्** है अर्थात् ईश्वर में किसी भी प्रकार का छेद नहीं है और न ही उसमें कोई छेद कर सकता है। ईश्वर **अस्नाविरम्** है अर्थात् ईश्वर नस-नाड़ी के बन्धन में कभी भी नहीं आ सकता क्योंकि शरीर में ही नहीं आता हो तो फिर नस-नाड़ी में कैसे बन्धेगा। परमेश्वर **शुद्धम्** है अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूपी दोषों से सर्वथा पृथक्-रहित होने से सदा पवित्र-शुद्ध है। जगदीश्वर **अपापविद्धम्** है अर्थात् जो पापयुक्त, पापकारी, पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं हो सकता इसलिए ईश्वर निष्पाप है। ईश्वर **कवि** है अर्थात् सर्वज्ञ-सर्ववित्-महाविद्वान् है, जिसकी विद्या का अन्त कोई भी मनुष्य नहीं ले सकता या सब मनुष्य मिल कर भी अन्त नहीं पा सकते इसलिए ईश्वर को कवि कहा है। ईश्वर **मनीषी** है अर्थात् सभी आत्माओं के मनोवृत्ति को जानने वाला है, सब का साक्षी है और सब के मनों को दमन करने वाला है। ईश्वर **परिभू** है अर्थात् सभी दुष्ट कर्मों को करने वाले पापियों का तिरस्कार-दण्ड देने वाला है। परमेश्वर **स्वयम्भू** है अर्थात् अनादि स्वरूप है जिसकी संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता, पिता, गर्भवास, जन्म, वृद्धि और मरण नहीं होते, ऐसे वह स्वयं सिद्ध परमेश्वर स्वयम्भू कहलाते हैं। **(शाश्वतीभ्यः)** अर्थात् सनातन अनादिस्वरूप अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित **(समाभ्यः)** जीवात्माओं के लिए **(यथातथ्यतः)** यथार्थ भाव से **(अर्थान्)** परमेश्वर ने यथावत् सत्य, सत्य विद्या जो चार वेदों द्वारा सब पदार्थों को **(व्यदधात्)** विशेष रूप से बना कर उपदेश किया है।

उपरोक्त यजुर्वेद के मन्त्र में ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभावों की चर्चा आई है, इसी प्रकार चारों वेदों में ईश्वर के अनेकों गुण, कर्म व स्वभावों की चर्चा है। वेद स्वाध्याय के द्वारा ईश्वर के यथार्थरूप को जान कर ही मनुष्य ईश्वरीय आज्ञा का पालन कर सकता है। ईश्वराज्ञा पालन के लिए ईश्वर की सर्वश्रेष्ठता का बोध होना चाहिए ईश्वर से सर्वाधिक लाभ का बोध होना चाहिए और ईश्वर से सर्वाधिक भय प्राप्त होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब ईश्वर का ज्ञान हो। इसलिए ईश्वर का बोध वेद द्वारा किया जाना चाहिए, जिससे मनुष्य को ईश्वर की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, न्यायकारिता और सर्वशक्तिमत्ता का पता लग सके। जब मनुष्य ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को वेद द्वारा जान लेता है तब उसे पता लगता है कि ईश्वर ने आत्माओं के लिए कितना उपकार किया है, कर रहे हैं और करेंगे। ईश्वर के अनगिनत उपकारों को जान कर ही मनुष्य ईश्वर के प्रति पूर्ण रुचि व आकर्षण उत्पन्न कर सकता है। जब ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा-विश्वास, रुचि, आकर्षण उत्पन्न हो जाता है तब ईश्वरीय उपदेश-आदेश मनुष्य के लिए ग्राह्य-अपनाने योग्य दिखाई देने लगता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य मानों आँख मीच कर सभी आदेशों का पालन करने लगता है। जैसे-जैसे ईश्वर-आदेश का पालन करता जाता है वैसे-

वैसे मनुष्य में विशेष गुण-दया, परोपकार, आत्मीयता, विनम्रता, सत्य, न्याय आदि अनेक गुण आ जाते हैं। जिससे मनुष्य देवत्व की ओर बढ़ता जाता है। जब मनुष्य प्राणिमात्र के लिए अभय प्रदान करता है, मन-वचन व शरीर से सत्याचरण करता है, पूर्ण अस्तेय का पालन करता है, पूर्ण संयम (ब्रह्मचर्य) वर्तता है, पूर्ण अपरिग्रह का पालन करता है, अन्दर व बाहर से शुद्ध होता है, उपलब्ध साधनों में पूर्ण सन्तुष्ट रहता है, सब को सहन करता है, स्वाध्याय निरन्तर करता है, ईश्वरानुभूति बनाया रखता है तब पूर्ण देवत्व को प्राप्त हो जाता है।

इसलिए मनुष्य केवल मनुष्य रह कर ही जीवन की इतिश्री न करे क्योंकि मनुष्य शरीर का मिलना अनेक पुण्य कर्मों का प्रतिफल है। उसे यूँ ही नहीं गवाना चाहिए अर्थात् ईश्वर प्रदत्त अमूल्य अवसर का पूर्ण लाभ उठाने के लिए ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभावों को वेद के माध्यम से जान कर ईश्वर-आज्ञा के अनुरूप चलकर मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए वेद के वचन को सार्थक करने हेतु उद्यत होना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है।

- ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

पुस्तक - समीक्षा

पुस्तक का नाम - आनन्द भजनामृत
लेखन एवं संकलन - श्री अशोक प्रभाकर चोणा
प्रकाशक - अशोक प्रभाकर चोणा, जी-१६, महेश नगर, अम्बाला छावनी-१३३००१
पृष्ठ संख्या - ८४

ईश्वर सर्वव्यापक है। उसकी अनुकम्पा एवं देन अनुपम है। ईश्वर की महिमा का गुणानुवाद वेद भी करते हैं। सामवेद गायन का हृदयस्पर्शी ग्रन्थ है। इसके द्वारा सभी रसों की अनुभूति होती है। भजनों का माध्यम ईश्वर को समर्पण की भावना संजोता है। हृदय से सप्त स्वर प्रस्फुटित होकर ईश्वर का धन्यवाद करता है। प्रभु स्मरण के लिए भजन गाना भाव विभोर करता है। आज वैदिक विद्वानों का सम्मान है, उसी अनुरूप भजनोपदेशकों का भी है। मंच की शोभा में चार चाँद लग जाते हैं। श्रोता भी दत्तचित्त हो जाते हैं।

श्री प्रभाकर चोणा ने आनन्द भजनामृत की रचना लेखन एवं संकलन रूप में की है। उन्होंने दो भागों में इसे बांटा है- प्रथम भाग में १० भजन श्री आनन्द प्रकाश जी जो इनके पिता है, द्वारा लिये गये। दूसरे भाग में उनके द्वारा लेखन व संकलन के भजन हैं। सभी भजनों की तर्ज सुमधुर पर आधारित है।

ईश्वर की सत्ता, प्रकृति एवं रचना का सामञ्जस्य इन भजनों के द्वारा प्राप्त होता है। भक्ति रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहे। ईश्वर का पारावार कोई नहीं पा सकता। वेद, उपनिषद् भी ईश्वर महिमा का गान करते-करते थक गये। भजन के माध्यम से ईश्वर के प्रति समर्पित की भावना हो जाय, ऐसे ही भजनों की प्रस्तुति आनन्द भजनामृत की रचना है। भाषा सरल है। ईश्वर एकाकार के लिए भजनों का माध्यम उत्तम है।

१. ऋषिवर सा कोई हुआ न होगा, ऋषिवर सा कोई तेजस्वी निर्भय धर्म का हितैषी, दयानन्द जैसा कहाँ कोई होगा?

२. गुरु विरजानन्द जो तुम जग में न आते, देश व धर्म कितनी हानि उठाते।

३. विश्वमोदक विनय विधिप्रद, हे निरञ्जन निर्विकार, अधमोधारक पतित पावन निर्गुण तुल सर्वाधार.....

मुझे ये भजन बहुत ही प्रेरक लगे। पाठकों को भी अन्य भजन स्वाध्याय से प्रिय व प्रेरणादायी लगे। स्वयं प्रेरित होकर अन्य को प्रेरित करे यही इच्छा भजनोपदेशक की है। अवश्य लाभान्वित हों।

- देवमुनि, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है, उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२५

कुछ तड़प-कुछ झड़प

– राजेन्द्र जिज्ञासु

पिछले अंक का शेष भाग.....

यहाँ उक्त ग्रन्थ के लेखक के कुछ विचार देते हैं:-

१. हिन्दुओं के शिवलिङ्ग अथवा कृष्ण जी की गोपियों का वेदों में कोई वर्णन नहीं मिलता। न ही वेदों में किस्से कहानियाँ हैं।

२. जो खुदा अपने राज्य के लिये मनुष्य पर आश्रित है वह कैसा कादिरे मुतलिक (शक्तिमान) है?

३. संसार के किसी नबी या अवतार के जीवन से यह प्रमाणित नहीं होता कि सूर्य, चन्द्र, तारे अथवा वायु उसके अधिकार में रहे हों। यद्यपि इस सम्बन्ध में तोता मेना की कहानियों की कमी नहीं परन्तु सच्चाई इसकी साक्षी नहीं देती।

४. इस बात की सम्भावना है कि अल्ला मियाँ के लिये नरक (दोजख) को विस्तार देना (फैलाना) आवश्यक हो जावे।

५. शैतानों को (मरियम में) खुदा का एजेन्ट कहा गया है।

६. कुरान का नजात का दृष्टिकोण शारीरिक भोग विलास (इशरत) है और यही कारण है कि खुदा कयामत के दिन मृतकों को फिर वैसे ही जीवित करेगा जैसे कि वे जीवन में थे तथा जीवन का अन्त वैदिक ध्येयधाम से सर्वथा पृथक् है जो परमात्मा तथा आत्मा के मिलाप की आशा है।

७. इस्लाम में कबर पूजा लानत (धिक्कार योग्य) है।

८. आश्चर्य है कि यदि खुदा को ऋण की आवश्यकता पड़े तो वह न केवल सूद देता है प्रत्युत अधिक सुविधा के रूप में ऋण देने वाले के पाप भी क्षमा करता है तो फिर सूद लेना हराम (वर्जित) कैसे?

९. गालिब ने लिखा है:-

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत
दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है

हजरत दाग ने लिखा है:-

जिसमें लाखों बरस की हुरें हों
ऐसी जन्नत का क्या करे कोई

१०. डॉ. इकबाल ने तो एक खुतबे में जन्नत तथा जहन्नुम दोनों से ही अपने आपको पृथक् कर लिया है अर्थात् वह दोनों में विश्वास नहीं करता।

एक ने तो यहाँ तक लिखने का साहस किया है

हमारा दिल घुमाने को, यह क्या हूरों का चक्कर है।
हमें उल्लू बनाने को, यह क्या हूरों का चक्कर है।।

ये जो विचार हमने उद्धृत किये हैं इन पर हम क्या टिप्पणी करें। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि सत्यार्थप्रकाश ने मुसलमानों को सोचना सिखा दिया। इस्लाम में ऋषि का सत्यार्थप्रकाश बोल रहा है। गूञ्ज रहा है। इस्लाम वैदिक धर्म के द्वार पर आकर भीतर झांक रहा है। आवश्यकता है एक पं. लेखराम की जो प्यार से झांकने वालों को भीतर खींच लावे। जो झिझक है उसे दूर करने के लिए एक पं. रामचन्द्र देहलवी की युग को प्रतीक्षा है।

बड़ों से सीखा:- पं. गुरुदत्त जी विद्यार्थी धुन के धनी थे। एक बार मन में लहर आई तो अपने पुस्तकालय की सब पुस्तकें अपने प्रेमियो को भेंट कर दीं। संस्कृत साहित्य, हिन्दी की कुछ सैद्धान्तिक पुस्तकें, फारसी भाषा का दीवो हाफिज तथा अमरीकन विद्वान् एण्ड्रयूज की पुस्तकें अपने स्वाध्याय के लिए रख लीं। दीवाने हाफिज स्थान-स्थान पर कई वेदोक्त उपदेश पाकर मन सचमुच झूम उठता है। एक पद्य में हाफिज महाकवि ने एक सारगर्भित सीख दी है:-

कू फुर्सिते कि खिदमे पीरे मुगाँ कुन्म।
वज पिन्दे पीर दौलते खुद रा जवाँ कुन्म।।

अर्थात् समय व अवसर कहाँ कि मैं माननीय वृद्ध गुरु की सेवा करुँ तथा उस वयोवृद्ध की सीख से अपने भाग्य को युवा बना लूँ। जो युवा साधु और विद्या प्रेमी वृद्ध गुरुजनों की संगति में रहे, वे गुरुमुख से सुन सुनकर बहुत कुछ सीख कर गम्भीर विद्वान् बन गये। तभी तो साध मण्डली बनाकर पग यात्रायें करके प्रचार करते थे। अब यह परम्परा टूट चुकी है। हर कोई अपना-अपना आश्रम बनाकर सत्ता, सम्पत्ति व प्रतिष्ठा पाना चाहता है।

अनुभवी विद्वानों से यह सीखा के प्रत्येक विषय पर जो कुछ लिखो व बोलो उस की जाँच, परख और मिलान आवश्य करो। छोटे बड़े जानकारों से सम्पर्क करके हर बिन्दु की पड़ताल करने से ही आप जनहित कर सकते हैं। इसके बिना जन हानि से पहले आपकी हानि है।

आर्यसमाज में यह परम्परा भी टूट गई है। पं.

शान्तिप्रकाश जी के दिल्ली में प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुके एक शास्त्रार्थ में एक प्रमाण देने के लिए लाया गया। उन्हें वह प्रमाण कण्ठाग्र था परन्तु आर्यों से कहा अमुक ग्रन्थ लाकर दो तब मैं कल शास्त्रार्थ करूँगा। रात-रात में प्रो. रामसिंह जी तथा ला. रामगोपाल एक मुसलमान की दुकान खुलवाकर वह ग्रन्थ लाये जिससे आर्य समाज की गौरवपूर्ण विजय हुई। ऐसी-ऐसी घटनायें देख सुनकर हमारे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और संस्कार बना।

ऋषि जीवन पर हमने नये-नये प्रमाण व टिप्पणियाँ दी हैं। गुणी विद्वान् व पाठक हमारे श्रम का मूल्याकंन कर ही रहे हैं। हम सबको बताते हैं कि यह सब बड़ों से तो सीखा ही वर्तमान में भी अनेकों से सहयोग व सीख ली। प्रतिदिन दस-पन्द्रह से चलभाष से महत्त्वपूर्ण विचार विमर्श करता था। कुछ युवकों को कई कार्य सौंपे। डॉ. धर्मवीर जी, परोपकारिणी सभा कार्यालय के सज्जनों, अजमेर के श्री सोनी जी, डॉ. सुरेन्द्रकुमार जी, श्री भावेश मेरजा, श्री सत्यजित् जी आर्य, श्री सोमदेव जी, श्री यशपाल जी मेरठ, श्री दयालमुनि जी, श्री वैद्यराज महेश भाई भावनगर गुजरात, श्री सत्येन्दसिंह जी, डॉ. वेदपाल जी, श्री धर्मपाल वेदपथिक, बनेड़ा राज्य के राजवंश के वर्तमान मुखिया, श्री ओममुनि जी, श्री देवनारायण जी अलीगढ़, वैद्य महीपाल जी आर्य चामघेड़ा, श्री अनिल, श्री महेन्द्र आर्य चामघेड़ा, डॉ. अशोक आर्य, श्रीयुत् राहुल जी अकोला, प्रिय मनोज आर्य दादरी, श्री राघव भाई मुम्बई, प्राचार्य रमेश जीवन, श्री विरजानन्द जी, आर्य समाज भुज कच्छ, आर्य समाज फर्रूखाबाद, छलेसर, आर्यसमाज बूढ़ाना द्वार मेरठ आदि कुछ नाम यहाँ दिये हैं। हमने छोटे हों या बड़े, इस बात को महत्त्व न देते हुए किसी को कोई कार्य सौंपा तो किसी से विचार विमर्श कर लाभ प्राप्त कर ग्रन्थ की गरिमा बढ़ाकर आर्य समाज की ठोस सेवा करने का पुण्य लूटा है। बस एक उदाहरण देकर इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हुए सब लेखकों से कर जोड़ विनती करेंगे कि आर्य पत्रों में आपधापी मत किया करें। हदीसें मत गढ़िये। जो लिखें बिना मिलान किये प्रमाण मत दिया करें।

देश भाषा क्या थी?:- पं. लेखराम जी ने ऋषि जीवन में लिखा है कि राजकोट में ऋषि ने देश भाषा में एक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान की धूम मच गई। ऋषि संस्कृत में शास्त्रार्थ करते थे और हिन्दी में व्याख्यान देते थे। फिर यह 'देश भाषा' में व्याख्यान का क्या अर्थ? हमने पं. लेखराम जी के ग्रन्थ की अन्त:साक्षी से इसे गुजराती में दिया गया व्याख्यान माना है। पहली बार किसी ग्रन्थ में यह छपा है कि राजकोट में गुजराती में ओजस्वी व्याख्यान देकर धूम मचा दी। सब विद्वान् मेरे प्रश्न को सुनकर चकित रह गये। यह प्रश्न कभी किसी ने उठाया ही नहीं था। सबने सहर्ष स्वीकार किया की 'देशभाषा' से अभिप्राय गुजराती ही है। श्रीमान् भारतीय जी 'देशभाषा' हिन्दी बताते हैं। उनका मत एक अपवाद जानना चाहिये। इस एक प्रसंग पर विचार करते-करते हम एक मास से ऊपर समय तक गुजरात और गुजरात से बाहर गुणियों से चलभाष पर विचार करते रहे। राधा स्वामी गुरु हजूर जी महाराज ने भी लिखा है कि मुम्बई में ऋषि जी ने गुजराती में भी व्याख्यान दिये। स्वामी सत्यानन्द जी ने भी ऋषि की साहित्यिक सुललित गुजराती बातचीत का उल्लेख किया है। यह बात किसी को भले ही छोटी लगे इसका अपना ही महत्त्व है। बड़ों से सीख पाकर हम लाभान्वित हुए हम चाहेंगे कि सभी ऐसे ही बड़ों का अनुचरण करें।

किसके पास जायें:- एक उत्साही युवक पर विधर्मियों ने अभियोग चला दिया है। सूचना पाकर कई दिन उस की निर्दोषता के लिए प्रमाण निकालने में लग गये। इतने में एक अन्य बन्धु ने परोपकारिणी सभा को सूचना दी कि रामपाल के चेलों ने उस पर केस कर दिया है। सभा ने धर्मरक्षा के लिए सहयोग का विश्वास दिलाया। धर्मरक्षा करने वाले दीवानों की रक्षा कौन करे? वे किसके पास जायें? इस विकट वेला में महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी वेदानन्द की गद्दियों की शोभा बढ़ाने वाले विद्वान् साधुओं का अभाव चुभता है। घर गृहस्थी निपटा कर अनेक व्यक्ति वानप्रस्थ की वेला में पूरा समय इस साधना में लगायेंगे तो हम बच पावेंगे।

एक गुणी सज्जन से भेंट:- लाला लाजपत राय जी द्वारा स्थापित लोकसेवक मण्डल के एक सुयोग्य युवक स्तम्भरूप कार्यकर्ता श्री अजय शर्मा से भेंट हुई तो आपने पूछा, क्या लाला लाजपतराय आर्य समाजी थे अथवा.....। उत्तर जो देना था सो दिया परन्तु हमें लगा कि दोष किसी का नहीं हमारा है जो घुसपैठियों व संस्थावादियों के हत्थे चढ़कर हमने सैद्धान्तिक प्रचार छोड़कर समाचार पत्र प्रचार का धन्धा चला दिया। आर्य समाज का स्वराज्य संग्राम को योगदान पर आये दिन लेख छपते हैं, भाषण होते हैं परन्तु हमने किसी के मुख से यह नहीं सुना कि हुतात्मा भगवती चरण सपरिवार ऋषि की मथुरा जन्मशताब्दी में आचार्य उदयवीर जी के संग गये थे। कोई नहीं यह बताता कि

स्वामी सत्यप्रकाश ही ऐसे अकेले वैज्ञानिक थे जो स्वराज्य संग्राम में जेल गये थे। कोई नहीं कहता कि स्वामी अनुभवानन्द जी एकमेव संन्यासी थे जिन्हें गोरों ने फांसी दण्ड सुनाया। हाँ कल्पना की उड़ान से भीष्म स्वामी को क्रान्तिकारियों की सूची में ले आये। कहानी गढ़ने में क्या लगता है। प्रमाण कुछ तो दो। हम उठाने वाले बिन्दु तो उठाते नहीं।

पं. लेखराम जी की निराली शानः- पं. लेखराम जी की शान निराली है। उन पर लिखने बोलने के लिए सैंकड़ों पुस्तकें और सहस्रों लेखों के आर-पार जाना पड़ता है। एक मुसलमान विद्वान् ने पण्डित जी के लिये 'कोहे वकार' गौरव गिरि विशेषण का प्रयोग किया है। हमारी इस खोज पर मान्य शरर जी झूम उठे। केवल एक ही मुस्लिम नेता के लिए एक मुसलमान ने इस विशेषता का प्रयोग किया है। सहस्रों हिन्दुओं, सिखों को धर्मच्युत होने से बचाने वाले साहस के अंगारे पं. लेखराम की शान निराली थी । महात्मा विशनदास उदासी सन्त विद्वान् डी.ए.वी. के प्रिं. रामकृष्ण बख्शी, सेना के सरदार सुन्दर सिंह पण्डित लेखराम की ही देन थे । श्री राजा किशनप्रसाद प्रधानमन्त्री हैदराबाद को मुसलमान होने से देहलवी जी ने बचाया था परन्तु उनके हृदय परिवर्तन के लिए पं. लेखराम जी के मौलिक तर्क दिये गये थे। यह स्वयं पूज्य देहलवी जी ने लिखा है।

- वेद सदन, अबोहर, पंजाब-१५२११६

सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार प्रसार

गत विश्व पुस्तक मेले में सभा द्वारा पांच हजार सत्यार्थप्रकाश (हिन्दी), दो हजार सत्यार्थप्रकाश (अंग्रेजी), ऋषि दयानन्द की जीवनी पाँच हजार, दो हजार सी.डी. का निःशुल्क वितरण किया। जिसकी सज्जनों द्वारा बहुत प्रशंसा की गई। अब सज्जनों का फिर उसी प्रकार के कार्यक्रम की मांग कर रहे हैं।

इस बार सभा ने कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए सत्यार्थप्रकाश को चार भाषाओं में वितरित करने की योजना बनाई है, क्रमशः हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू का सत्यार्थप्रकाश प्रकाशन की प्रक्रिया में है।

ऋषि जीवनी भी अंग्रेजी, हिन्दी दोनों भाषाओं में तैयार कराई जा रही है। सभी धर्मानुरागियों से निवेदन है, इस कार्य के लिए आप जितना अधिक सहयोग प्रदान करेंगे। सभा उतने ही विशाल रूप में इस कार्यक्रम को सम्पन्न करेगी। पूर्व की भाँति आपका सहयोग व समर्थन प्राप्त होगा।

सहयोग राशि निम्न क्रमांक के खातों में जमा कराई जा सकती है अथवा बैंक ड्राफ्ट, चेक द्वारा प्रेषित कर कार्यालय में जमा कराई जा सकती है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर

१. बैंक खाता संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या -10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें अन्यथा व्यक्ति के नाम से शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। परोपकारिणी सभा आप सभी का सहयोग चाहती है।

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर (प्राथमिक व द्वितीय स्तर)

दिनांक : १२ से १९ अक्टूबर, २०१४

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों–बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।
२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।
३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।
४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।
५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।
६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखना, पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।
७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा सर्दी, खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।
८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।
९. किसी भी मादक द्रव्य, चाय–कॉफी आदि का सेवन निषिद्ध होगा।
१०. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।
११. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ–मन्त्री परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने–ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ अन्यथा यहाँ भी क्रय किया जा सकता है। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। यदि अपने कार्य स्वयं न कर सकते हों तो सहायक साथ

में लायें। अजमेर या निकटवर्ती स्थल (पुष्कर) देखना चाहें, तो शिविर से पूर्व या पश्चात् अतिरिक्त समय निकाल कर आयें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मंत्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४
email:psabhaa@gmail.com

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेल्वे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

-संयोजक

धनराशि भेजने हेतु सूचना

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उस पर '**मन्त्री परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर

१. बैंक खाता संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या -10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१२ से १९ अक्टूबर, २०१४- **योग-साधना शिविर (प्राथमिक व द्वितीय स्तर),**
सम्पर्क- ०१४५-२४६०१६४

ऋषि मेला - ३१ अक्टूबर तथा १, २ नवम्बर २०१४

ध्यान प्रशिक्षण योजना

ध्यान का महत्त्व सदा से रहा है। आज के तनाव व प्रतिस्पर्धा के वातावरण में यह अधिक आवश्यक हो गया है। नई पीढ़ी यज्ञादि कर्मकाण्ड की अपेक्षा-ध्यान में अधिक रुचि व आकर्षण रखने लगी है। प्रौढ़ों व वृद्धों की आध्यात्मिक उन्नति की चाह ध्यान के माध्यम से पूरी हो सकती है। समाज सुधार व उन्नति के इच्छुक व इसमें प्रयत्नशील आर्यों को ध्यान प्रशिक्षण का उपाय सार्थक लगेगा। ऐसी इच्छा वाले सज्जन अपने यहाँ किसी भी आर्यसमाज, आर्य संस्था, विद्यालय, महाविद्यालय, गुरुकुल, सार्वजनिक स्थान आदि में 'ध्यान-प्रशिक्षण' करवाना चाहते हों, तो कृपया अपने व कार्यक्रम-स्थान, समय आदि की पूरी सूचना के साथ सम्पर्क करें।

परोपकारिणी सभा द्वारा प्रशिक्षित अनेक ध्यान-प्रशिक्षक इस कार्य में सेवा के लिए तैयार हैं। ये ध्यान-प्रशिक्षक आपके जनपद के निकट भी उपलब्ध हो सकते हैं। आयोजकों को कार्यक्रम हेतु स्थान, बैठक-व्यवस्था, आवश्यक हो तो माईक आदि की व्यवस्था, प्रशिक्षक के निवास, भोजन, आवागमन यात्रा आदि की व्यवस्था करनी होगी।

सम्पर्क-संयोजक, ध्यान प्रशिक्षण योजना, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर, ३०५००१, दूरभाष-०१४५-२४६०१६४, ईमेल-psabhaa@gmail.com

यू-ट्यूब पर वीडियो प्रवचन उपलब्ध

वेद एवं आर्ष साहित्य में रुचि रखने वाले आर्यजगत् एवं धार्मिक जनों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब यू-ट्यूब पर अनेक वैदिक आर्य विद्वानों के सैंकड़ों नये-नये प्रवचन उपलब्ध हैं। विश्व में कहीं पर भी इन्टरनेट से जुड़ कर ये प्रवचन नि:शुल्क सुने-देखे तथा डाउनलोड किये जा सकते हैं। आप जहाँ भी हैं, यदि आपको वैदिक आर्ष ज्ञान की पिपासा है, वेद एवं आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय के साथ आप इन पर विद्वानों के प्रवचन भी सुनना चाहते हैं, तो इन्टरनेट से जुड़ कर सरलता से सुन सकते हैं।

इसके लिए you tube पर जाकर playlist of paropkarini sabha लिख कर सर्च करें, तो आपको अनेक प्लेलिस्ट मिलेंगी, यथा- वेद प्रवचन, योग दर्शन, ईशोपनिषद् आदि। इनमें इच्छानुसार जाकर लाभ उठाया जा सकता है। आप अपने परिचितों को यह सूचना देकर उन्हें भी लाभ उठाने को प्रेरित कर सकते हैं। भविष्य में अन्य भी नये-नये प्रवचन इस सूची में उपलब्ध कराये जाते रहेंगे।

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

।। ओ३म् ।।

अलग-अलग स्तरों में योग-साधना शिविर

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि-उद्यान, अजमेर में वर्षों से अब तक योग्य आचार्यों द्वारा योग-साधकों का निर्माण करने के लिए वर्ष में दो बार योग से सम्बन्धित व ध्यान से सम्बन्धित शिविरों का आयोजन किया जाता रहा है और साधकों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किया जाता रहा है। समाज में और अधिक योग्य व आदर्श साधकों की आवश्यकता अनुभव करते हुए इस वर्ष जून मास के शिविर में नवीन पाठ्यक्रम की विधि अपनाकर इस दिशा में एक नया मोड़ दिया गया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान में योग-साधना शिविर (प्राथमिक स्तर) के दो शिविर लगाये जा चुके हैं। यह शिविर ध्यान से सम्बन्धित, ईश्वर-जीव-प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को जानने से सम्बन्धित, योगदर्शन व सांख्यदर्शन के कुछ प्रमुख विषयों के सूत्रों के माध्यम से प्राथमिक स्तर पर योगदर्शन व सांख्यदर्शन को जानने-समझने से सम्बन्धित, आत्मनिरीक्षण में कुछ नये विषयों को सूक्ष्मता से समझने से सम्बन्धित, दिनचर्या को अनुशासित व सात्त्विक बनाने से सम्बन्धित तथा विभिन्न सैद्धान्तिक व व्यावहारिक विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित प्रारम्भिक स्तर के योग के इच्छुक साधकों के लिए लगाया गया। इस योग-साधना शिविर को आगामी वर्षों में चतुर्थ स्तर तक लगाने की योजना बनाई गई है। प्रारम्भिक स्तर से लेकर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्तर तक के शिविरों में पूर्व सूचित पाठ्यक्रमित विषयों में अधिक से अधिक सूक्ष्मता, दिनचर्या में और अधिक अनुशासन व सात्त्विकता, आहार-शुद्धि से लेकर मन, आत्मा की शुद्धि पर्यन्त अनुभवात्मक स्तर पर योग-साधकों को ज्ञान करवाया जाएगा। प्रत्येक स्तर के साधकों को उनके सैद्धान्तिक व व्यावहारिक ज्ञान से सम्बन्धित तथा उनके व्यक्तिगत आचरण व अनुशासन को दृष्टि में रखते हुए परीक्षा-पद्धति के माध्यम से प्रथम-श्रेणी व उच्च प्रथम-श्रेणी के प्रमाण-पत्र दिए जायेंगे। इस प्रकार की विधि से योग्य साधकों को समाज में सम्मान मिलेगा तथा वे और अधिक उत्साह से समाज व देश के कल्याण के लिए कार्यरत होंगे, उन्हें देखकर अन्य साधक भी प्रेरित होंगे।

परोपकारिणी सभा व गुरुकुल ऋषि उद्यान के योग्य आचार्यों व संयोजकों द्वारा नवनिर्मित इस योजना के प्राथमिक स्तर में पर्याप्त उपलब्धि हुई है। भविष्य में इस योजना में आप सब के सहयोग की आवश्यकता है।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हो। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

आर्य समाज का प्रथम नियम

-प्रो. वीरेन्द्र कुमार अलंकार

'परोपकारी' पत्रिका इस दृष्टि से बधाई की पात्र है कि इसमें पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष दोनों को ही प्राय: समान स्थान मिलता है। ज्ञानयात्रा की संवाहिका पत्रिका से ऐसी आशा करनी भी चाहिए। परोपकारी जून (द्वितीय)२०१४ अंक में श्री मणीन्द्र कुमार व्यास जी ने आर्य समाज के प्रथम नियम पर कुछ प्रश्न उठाए हैं। व्यास जी ने इन प्रश्नों की पृष्ठभूमि भी बताई कि मैंने अनेक विद्वानों से प्रश्न किए, पर सन्तोषजनक समाधान नहीं मिला । उन्हें यह भय भी रहा कि आक्षेपों से कोई उन्हें स्वामी जी के प्रति श्रद्धाहीन न समझ ले।

अस्तु, वेद और दयानन्द दृष्टि का उज्जवल पक्ष यही है कि हमें शालीनता से प्रश्न उठाने ही चाहिएँ। आचार्य सत्यजित् जी ने जिस शास्त्रीय अन्दाज में प्रथम नियम पर उठी विप्रतिपत्तियों का समाधान (उसी अंक तथा अगले अंक में) किया है। इसके लिए मैं उन्हें प्रणामाञ्जलि अवश्य अर्पित करना चाहूँगा। आर्य समाज के प्रथम नियम की जो मीमांसा आचार्य जी ने कर दी है, उससे यद्यपि सारे समाधान हो गए हैं, पुनरपि मैं इसमें कुछ इसलिए जोड़ना चाहूँगा कि मेरे विद्यार्थी काल में मेरे पूज्य गुरुवर प्रो. कपिल देव शास्त्री (अध्यक्ष, दयानन्द पीठ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) जो पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु व पं. युधिष्ठिर मीमांसक के शिष्य थे, ने भी एक दिन यह प्रश्न मुझ से पूछ लिया कि स्वामी जी ने सत्यविद्या का ग्रहण क्यों किया और फिर दोबारा विद्या की बात क्यों उठाई। तब किन्हीं कारणों से इस प्रश्न पर मैं उनसे चर्चा नहीं कर पाया किन्तु यह प्रश्न बार-बार स्मरण आता रहा । यहाँ चण्डीगढ़ क्षेत्र के आर्य समाजों में मैंने कई बार आर्यसमाजों के नियमों पर कुछ व्याख्यान भी दिए । अभी जब डी.ए.वी. संस्था में श्री पूनम सूरी जी ने प्रधान पद संभाला, तो एक आशा यह भी उदित हुई कि डी.ए.वी. में अब आर्यसमाज की धारा के पनपने का अधिक अवकाश हो गया है और इसी कारण डी.ए.वी. प्रधान के परामर्शक श्री हंसराज गन्धार जी, जो चण्डीगढ आर्य प्रदेशिक उपसभा के प्रधान भी हैं, ने सर्वप्रथम चण्डीगढ़ मोहाली और पंचकूला के डी.ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्यों को बुलाया और मेरे आग्रह पर आचार्य डॉ. वेदपाल जी (मेरठ) को आमन्त्रित करके यज्ञ सम्बन्धी विधियों की उपयोगिता पर खुली चर्चा कराई और यह आशा की गई कि डी.ए.वी. के सब प्राचार्य कम से कम ब्रह्मयज्ञ और सामान्य अग्निहोत्र को तो अवश्य ही समझें और स्वयं करना भी सीखें। इसी श्रृखंला में ६ मई, २०१४ को डी.ए.वी.कॉलेज, सैक्टर १०, चण्ड़ीगढ़ में ऋषि दयानन्द के वैदिक दर्शन पर एक गोष्ठी भी कराई गई, आचार्य वेदपाल (मेरठ) और प्रो. सुरेन्द्र कुमार (रोहतक) को विशेष रूप से बुलाया गया। संगोष्ठी की विषय स्थापना के लिए मुझे कहा गया। पिछले वर्ष यह चर्चा भी उठी कि डी.ए.वी. के सब प्राचार्य आर्यसमाज के नियमों को समझें और प्रत्येक प्राचार्य को कहा गया कि आप किसी भी एक नियम को चुनें और उस पर चिन्तन करके फिर उस नियम पर २५-३० मिनट का व्याख्यान भी दें। यह कार्य प्रारम्भ भी हो गया, पर कुछ शिथिलता आ गई। अभी कुछ समय पूर्व डी.ए.वी. स्कूल, सूरजपुर (पंचकूला) में आर्यसमाज के नियमों पर प्रतियोगिता भी आयोजित की गई, जिसमें दूसरी परम्परा के विद्यालयों के छात्रों ने भी भाग लिया, यह एक अच्छा संकेत है। कुछ प्राचार्यों के मेरे पास फोन आने लगे और आर्यसमाज के नियमों पर चर्चा होने लगी। प्राय: सभी की माँग यह थी कि कोई किताब बताएँ, जिसमें आर्यसमाज के नियमों की बृहद् मीमांसा हो।

अनेक प्रश्न मेरे समक्ष भी उपस्थित होने लगे। 'परोपकारी' ने इस यात्रा को आगे बढ़ाया है। आचार्य सत्यजित् जी जैसे विद्वान् से इसी शास्त्रीय समाधान की अपेक्षा थी।

आचार्य जी ने जिन तथ्यों को बता दिया है, मेरा प्रयास रहेगा, उनकी पुनरुक्ति न हो। आर्यसमाज के प्रथम नियम पर प्राय: ये प्रश्न या आक्षेप किए जाते हैं-

(क) सब सत्य विद्या यह वाक्य रचना दोषग्रस्त है।

(ख) सत्य विद्या में सत्य विशेषण क्यों?

(ग) पदार्थ का तात्पर्य क्या?

(घ) आदिमूल परमेश्वर कैसे?

'सत्यार्थप्रकाश' पर भी अनेक आक्षेप किए जाते हैं। सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि किसी लेखक का अभिप्रेतार्थ क्या है। क्योंकि अकेले शब्दों के मल्लयुद्ध का कोई लाभ नहीं। इसीलिए स्वामी जी ने चेताया है कि 'जो कोई..... तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा' (सत्यार्थप्रकाश की भूमिका)। क्योंकि जो तात्पर्यार्थ पर ध्यन नहीं देंगे वे

वाक्यार्थबोध नहीं समझेंगे और व्यर्थ के प्रश्न उठांएगे। पूरे भारतीय दर्शन को विरोधी खेमों में बाँटने वाले वही तथाकथित शास्त्रज्ञ हैं, जिन्होंने तात्पर्यार्थ की उपेक्षा की। इसी कारण आस्तिक दर्शनों के भी निरीश्वर और सेश्वर भेद कर दिए । यह उपकार है इस महान् योगी स्वामी दयानन्द सरस्वती का जिससे सत्यार्थप्रकाश (में छः दर्शनों के) समन्वय का अद्भुत मार्ग बताया है। तात्पर्यार्थ जानने से आर्यसमाज के नियमों पर उठे प्रश्नों पर स्वयं विराम लग जाएगा। आइए, यहाँ आर्य समाज के प्रथम नियम पर कुछ विचार करें-

(क) 'सब सत्य विद्या' में वाक्य रचना सम्बन्धी दोषविचार- 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है।' इस नियम पर आक्षेप यह है कि सब सत्य विद्याएँ ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग होना चाहिए था, क्योंकि 'सब' इस पद से स्पष्ट हैं कि यह बहुवचनान्त प्रयोग है। अतः विद्या का बहुवचन तो विद्याएँ होता है। आक्षेपकत्ताओं के अनुसार भाषा की दृष्टि से वाक्यरचना यह होनी चाहिए- 'सब सत्य विद्याएँ और जो पदार्थ विद्याओं से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल परमेश्वर है।'

हमें यह स्मरण रखना कि स्वामी जी वेद के आचार्य हैं। इसलिए उनके चिन्तन और वाक्यविन्यास में औपनिषदिक प्रभाव है। वे ऐसे शब्द का व्यवहार करते हैं, जिसकी अनेक दिशाएँ होती हैं। इसलिए उनके वाक्यविन्यास का सौन्दर्य उनके शब्द प्रवाह में ही अनुभव किया जा सकता है।

यहाँ पूर्वपक्षी की सबसे पहले तो यही स्थापना गलत है कि 'सब' शब्द बहुवचनान्त है। क्या एकवचनान्त 'सर्वः' या 'सर्वा' शब्द अशुद्ध है? सर्वा विद्या के व्यवहार में क्या विप्रतिपत्ति है। हमें लगता है 'सब सत्य विद्या' को एकवचनान्त मानने में कोई भाषिक नियम बाधक नहीं है। यहाँ 'सब' का अर्थ सब प्रकार की सत्यविद्या भी है और सर्वा सत्यविद्या भी। महाभाष्यकार पतंजलि ने 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' इस वार्तिक की मीमांसा में 'सिद्ध' शब्द का अर्थान्वेषण करते हुए अनेक विकल्प दिए हैं। संस्कृतवाक् में पूर्वपदलोप और उत्तरपदलोप भी देखा जाता है। इसलिए 'सिद्ध' का एक अर्थ अत्यन्तसिद्ध भी किया गया है। जैसे लोक में देवदत्त को दत्त भी कहा जाता है और विष्णुगुप्त को अकेले विष्णु भी अर्थात् एक में पूर्वपदलोप है और दूसरे में उत्तरपदलोप । इसी प्रकार 'सर्वप्रकारक सत्य विद्या' के लिए 'सब सत्य विद्या' कहने में वाक्यरचना दोष कैसा?

हिन्दी में ऐसे प्रयोग खूब होते हैं, जैसे सब पक्षी का अर्थ सारे पक्षी भी है और सब प्रकार के पक्षी भी। 'वेद' शब्द एकवचनान्त पठित होने से क्या 'एक वेद' यही अर्थ ग्राह्य है- सब वेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें। धन की उपासना करो। विद्या की उपासना करो। दुरित छोड़ो आदि वाक्य क्या व्याकरणदोष से युक्त है? यहाँ एक वचन भले ही है, किन्तु एक वेद, एक धन, एक विद्या, एक दुरित यह अर्थ नहीं है, बल्कि बह्वर्थक है । हिन्दी में यह एकवचन है और 'ये' बहुवचन। अब एक प्रसिद्ध हिन्दी गीत की यह पंक्ति देखिए-'ये कैसा रिश्ता है, ये कैसे सपने हैं, बेगाने होकर भी जो लगते अपने हैं।' इसमें 'ये रिश्ता' क्या अशुद्ध प्रयोग है? वस्तुतः हिन्दी भाषा में ये स्वीकृत प्रयोग हैं। हमें यह मानना ही चाहिए कि कारक, वचन, लिङ्ग में वक्ता की विवक्षा भी नियामक है। संस्कृत की तो बड़ी उक्ति भी है-**विवक्षातः कारकाणि भवन्ति।** इसका आशय यह न समझें कि मैं अशुद्ध भाषिक प्रयोगों की वकालत कर रहा हूँ। स्वामी जी का यह वाक्यप्रयोग देखिए-**यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वरः** (दयानन्द यजुर्वेदभाष्य का पुरोवाक्)। क्या यहाँ सर्वसुकृतज्ञानम् पद अशुद्ध है? क्या यह बहुवचनान्त(सर्वसुकृतज्ञानानि)ही होना चाहिए। स्वामी जी के इस श्लोकांश का अर्थ यही तो है कि जो परमेश्वर जीवों में सब प्रकार के सुकृतज्ञान को धारण करता है। इसमें ज्ञान का आदि स्रोत (मूल) ईश्वर ही बताया गया है।

इसलिए 'सब विद्या' को एकवचनान्त मानने में कोई दोष नहीं है और यदि इसे बहुवचनान्त ही मानें तो भी हिन्दी में 'विद्याएँ' रूप ही होगा, ऐसा नियम कहाँ है। 'मैंने गुरुकुल में विद्या ग्रहण की' का अर्थ एक विद्या नहीं है। हिन्दी के भाषिक नियमों में अनेक विकल्प होते हैं। इसमें वचन, लिङ्ग और कारक व्यवस्था के कठोर नियम नहीं है। मैं उसे मिला, मैं उससे मिला और मैं उसको मिला-ये सभी प्रयोग वाग्व्यवहार में हैं। डेढ शताब्दी पुरानी हिन्दी की वाक्यरचना की तुलना आज की हिन्दी से करके उसके शुद्धाशुद्ध सम्बन्धी निष्कर्ष घोषित करना तो अद्भुत भाषाविज्ञान हुआ। क्या तुलसीदास, कबीर और सूरदास की भाषा की शुद्धता का निर्णय आज की भाषा से किया जा सकता है? कबीर आदि तो पुराने कवि हैं, आधुनिक कवि जयशंकर प्रसाद की भाषा और आज की भाषा में ही कितना अन्तर हो गया है।

मणीन्द्र व्यास जी ने एक सम्भावना यह भी व्यक्त की

है कि पहले आर्यसमाज के नियम संस्कृत में थे, उनका अनुवाद कदाचित् ठीक नहीं हुआ है। उनके अनुसार नियम का स्वरूप यह था–**याः सत्यविद्याः विहिताः पदार्थाः तेषां सर्वेषां प्रभुरादिमूलम्।** इस सन्दर्भ में हमारा निवेदन है कि हमारे अध्ययन में यह कभी नहीं आया कि पहले यह नियम संस्कृत में इस रूप में था, पर कल्पना कीजिए मूलरूप में यह नियम संस्कृत में निबद्ध रहा भी हो, तो विबुध जन स्वामी जी की संस्कृत शैली का अवलोकन अवश्य करें, उनकी भाषा उपनिषदों की भाषा सी सरस है। अतः उसका स्वरूप मणीन्द्र जी द्वारा दी गई भाषा 'याः सत्यविद्याः....' ऐसा रहा हो , इसकी सम्भावना हमें बिल्कुल भी नहीं लगती। इस सन्दर्भ में हमारा अन्तिम निवेदन यह है कि अनुवाद एक स्वतन्त्र विधा है। यह जरूरी नहीं कि जिन शब्दों का प्रयोग मूलभाषा में हो, वही अनूदित भाषा में भी हो। अनुवादकला का सिद्धान्त है कि अनुवाद शब्दों का नहीं बल्कि तात्पर्यगर्भित वाक्यों का होता है। अनुवाद में तात्पर्यार्थ स्पष्ट होना चाहिए। इसलिए एक क्षण के लिए यह मान भी लें कि पहले नियम यह था कि **'याः सत्यविद्याः पदार्थाः'** आदि तो भी इसका तात्पर्यार्थ तो यही मानने में बुद्धिमत्ता है, जो आज हमें प्रथम नियम में उपलब्ध है। अनुवाद में यह सम्भव है कि किसी भाषा में बहुवचन से अर्थप्रतिपत्ति अधिक स्पष्ट हो और अनूदित भाषा में एक वचनान्त से । अग्रेंजी में police शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है और अनुवाद करते समय हिन्दी में एकवचन में पुलिस शब्द प्रयुक्त होता है, वह भी स्त्रीलिंग में। भारत में 'स्वामी जी' शब्द ऋषि दयानन्द के लिए बहुप्रचलित है, किन्तु इसको रूसी या जर्मनी में अनुवाद करते हुए अनुवादक को स्वामी जी के स्थान में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखना पड़ सकता है।

वस्तुतः यह वक्ता की विवक्षा पर निर्भर करता है कि उसका तात्पर्य एकवचन से सिद्ध हो रहा है या बहुवचन से । मैंने सारी परीक्षा उत्तीर्ण की यह भी ठीक है और मैंने सारी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की यह भी ठीक है। व्याकरण दर्शन के विद्वान् नागेशभट्ट ने नामार्थ पर विचार करते हुए अपने निष्कर्ष में बताया है कि जातिविशिष्ट व्यक्ति भी नामार्थ है और व्यक्ति विशिष्ट जाति भी । इसलिए आर्यसमाज के नियम में विद्या का अर्थ एक विद्या नहीं है। भाषा का संसार बड़ा विचित्र है। वैयाकरणों ने 'सर्व' के रूप सिद्ध किए कि- सर्वः, सर्वौ, सर्वे, (पुं.), सर्वा, सर्वे, सर्वाः (स्त्री), और सर्वम्, सर्वे, सर्वाणि (नपुं.), किन्तु 'सर्व' का द्विवचनान्त प्रयोग साहित्य में कदाचित उपलब्ध ही नहीं है। आप द्विवचनान्त 'सर्व' शब्द की वाक्य रचना करके देखिए, तो क्या वैयाकरणों को आप यह कहेंगे कि उन्हें भाषा का ज्ञान नहीं था। क्या आप पाणिनि को अज्ञानी मान बैठेंगे कि **'आदिर्ञिटुडवः'** (पा.१.३.५) में उन्होंने विशेष्य के अनुसार विशेषण का प्रयोग नहीं किया। 'आदिः' यह एकवचन है और 'ञिटुडवः' बहुवचनान्त है।

अब दुर्जनपरितोषन्याय से यह मान भी लें कि प्रथम नियम को और परिष्कृत किया जा सकता है, तो क्या विद्वानों को परिष्कार या परिमार्जन करना चाहिए? इसका उत्तर है- कभी नहीं। क्योंकि परिवर्द्धन या परिमार्जन से निम्नलिखित हानि होगी। हाँ, यहाँ 'हानि' इस एक वचन का अर्थ एक हानि नहीं है, बल्कि अनेक प्रकार की हानि होगी। यहाँ एकवचन का प्रयोग वक्ता की विवक्षा के अधीन है–

१. पहली हानि तो यह होगी कि वक्ता मूल शब्द से जिन अर्थों का स्पन्दन करना चाहता है, वह स्पन्दन ही रुक जाएगा। आप विद्या के स्थान पर शिक्षा और शिक्षा के स्थान पर विद्या का प्रयोग कर दें, तो भारी अनर्थ हो जाएगा । **विद्ययाऽमृतमश्नुते** के स्थान पर **शिक्षयाऽमृतमश्नुते** कहने से मूल शब्दों का अर्थस्पन्दन बाधित होगा। इसी प्रकार **श्रद्धावान् लभते शिक्षाम्** करना कहाँ तक ठीक है।

२. दूसरी हानि यह है कि इस प्रकार के शोधन से अनवस्थादोष की प्रसक्ति होगी। आप शोधन करेंगे, तो दूसरा व्यक्ति आप में भी दोष देखेगा, फिर तीसरा, चौथा, पाँचवाँ शोधन होगा। यह शोधन तो किसी कहावत या फिल्मी गीत में भी नहीं हो सकता, भला आचार्यों का शोधन क्या करेंगे।

३. तीसरी हानि यह है कि प्रश्न करने की प्रवृत्ति किंवा जिज्ञासुभाव समाप्त हो जाएगा। फिर विद्वानों के समाधानों से लोग वंचित रहेंगे। इसलिए शालीनता पूर्वक प्रश्नों को आर्य समाज में सदा सम्मान से देखा गया है।

अतः यह सुझाव कदापि स्वीकरणीय नहीं है कि किसी भी नियम में सुधार की बात सोची जाए । सन्देह होने से विद्या कभी अविद्या और वस्तु की भी अवस्तु नहीं बन जाती । सन्देह का इलाज विशेष प्रतिपत्ति है। इसीलिए पतंजलि मुनि ने कहा है कि- **व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्।** सन्देह होने पर क्या वेद मन्त्रों में भी शोधन करेंगे? असली बात तो यह है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए सर्वदा सजग रहना चाहिए कभी पूर्वपक्षी बनकर तो कभी एक देशी बनकर और कभी समाधाता बनकर।

शेष भाग अगले अंक में....